पृथ्वीराज विजय–एक ऐतिहासिक महाकाव्य

आमेर–जयपुर के शासक सूर्य वंशी कछावाह हैं, जिनका संबन्ध भगवान श्रीराम के पुत्र कुश के साथ जोड़ा जाता है। इतिहास में इन्हें "कच्छपघात" के नाम से भी लिखा है। सं० १०८८ के एक शिलालेख से, जो देवकुण्ड नामक स्थान पर मिला था, विदित होता है कि ९७७ ई० (संवत् १०३४) में वहां पर 'वज्रदामन्' नामक एक प्रतापी राजा राज्य करता था। इसने कन्नौज के राजा विजयपाल परिहार पर विजय प्राप्त कर ग्वालियर राज्य को अपने अधिकार में कर लिया था। वज्रदामन् के पुत्र का नाम मङ्गलराज था। श्री मङ्गलराज के छोटे पुत्र सुमित्र और उनके क्रमशः मधु ब्रह्म, कहान, देवानीक ईश्वरीसिंह (ईशदेव) तथा सोढदेव हुए। महाराज सोढदेव ही प्रथम व्यक्ति हैं जिन्होंने ढूंढाड प्रदेश पर अपना अधिकार किया था।

इस कच्छवंशीय शासकों की वंशावली के मूल पुरुष हैं—महाराज ईशदेव। ये ग्वालियर के शासक थे जिसे तत्कालीन इतिहास में 'गोपाद्रि' कहते हैं। इस पर उनके भगिनी पुत्र–श्री जयसिंह तवर का शासन हो गया था, जिसके संबन्ध में अनेक मतभेद हैं। प्राचीन रिकार्ड से यही सिद्ध है कि महाराज सोढदेव को अपने पिता का राज्य नहीं मिला। इन्होंने करौली की तरफ अमेठी नामक स्थान पर शासन किया था। उनके पुत्र का नाम 'दूलहराय' था। इनका विवाह मोरां के राजा रालणसी (रालणसिंह) चौहान की पुत्री 'सुजानकुंवरी' के साथ सम्पन्न हुआ था। इनकी सहायता से ही श्री दूलहराय ने 'द्यौसा' (दौसा) पर अधिकार किया और वहां के शासक मीणों एवं बजगूजरों को युद्ध में परास्त किया। इनको 'दूल्हा' भी कहते थे और इसी को अंग्रेजी में लिखने की भ्रान्ति से राजस्थान के इतिहासकार कर्नल जेम्स टाड ने इन्हें 'ढोला' के रूप में प्रस्तुत किया हैं। इन्होंने 'जमवाय माता' का मन्दिर बनाया था, जब 'माची' पर विजय प्राप्त की थी। यह मन्दिर माची से ३ कोस पर आज भी विद्यमान है। इनके पुत्र का नाम काकिल जी था, जिन्होंने आमेर बसाया था–'काकिल जी आमेर बसायो'—(मुहता नैणसी री ख्यात जयपुर भाग)। तभी से सवाई जयसिंह द्वितीय तक आमेर इन कछावाहों की राजधानी रही। श्री जयसिंह ने जयपुर बसाकर राजधानी में परिवर्तन किया था।

जयपुर के कछवाहों की वंशावली बहुत विस्तृत है, उसकी यहां आवश्यकता भी नहीं। जिस काव्य का विवेचन कर रहे हैं, उसमें यह वंशावली उपलब्ध है, इससे साहित्यिक प्रमाण भी उपलब्ध हो जाता है। जैसाकि इसका नाम है, श्री पृथ्वीराज १८वीं पीढी में हुए थे। यह इतिहास से प्रमाणित तथ्य है।

एशियाटिक सोसायटी, कलकत्ते में संगृहीत हस्तलिखित ग्रन्थों में इतिहास विषयक एक ग्रन्थ आमेर–जयपुर के शासकों से संबद्ध भी है। इसका नाम 'पृथ्वीराज-विजय' है। यह क्रमांक १०४३४ पर उपलब्ध है। प्रकाशित सूचीपत्र में इसकी विगत इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Substance—Country made Paper.

Size—5 × 9 inches.

Folio—12 (Marked by M. M. Harprasad Shastry, vice President of Asiatic Society, Calcutta.

Lines—9 to 12 in a page.

Character—Modern Nagar.

Appearance—Solid, written lengthwise & on the one side. The former owner of the manuscript thought the 7th leaf to be the first on which he wrote—

"गोकुलप्रशादस्येदं पुस्तकं पृथ्वीराज विजय खण्डित् १२ पत्राणि ।"

इस ग्रन्थ में ६२४ वें पद्य से ७७९ पद्य तक उपलब्ध हैं। इनमें आमेर के कछवाह शासकों का इतिहास है। इतिहास के आधार पर हम इसकी आलोचना प्रस्तुत करते हैं। ग्रन्थ के नाम का औचित्य विचारणीय है। लेखक का नाम कहीं भी नहीं आया है। इसे ऐतिहासिक महाकाव्य न कहकर केवल काव्य की ही संज्ञा देंगे। जो १२ पत्र उपलब्ध हैं, वे अपने में पूर्ण हैं। कहीं कहीं पर अशुद्ध अवश्य हैं और दुर्वाच्य भी। उपलब्ध १५६ पद्यों में २० शासकों का वर्णन है।

इस ग्रन्थ का प्रथम श्लोक (उपलब्ध ६२४ वां इस प्रकार है—

"स श्रीमानुपग्रह्य हर्षदकृति स्तत्पारिवर्हं ततो
विस्मेरीकृत सर्वलोकनिवहो रम्यैरनेकैर्गु णैः ॥
औदार्यादिभिराविधाय विधिवद् वैवाहिकां स्नान् विधीन
स्तेनैनु व्रजता समं कतिपयै प्रत्याययौ पद्धतिम्" ।।६२४।।

यह महाराज सोढदेव का वर्णन है। महाराज सोढदेव ने यादव कुल की राजकुमारी से विवाह किया था, जिसके गर्भ से 'दूलहराय' उत्पन्न हुए थे। (जयपुर का इतिहास—पं० हनुमान शर्मा चौमू-पृष्ठ, १३-१४) जैसाकि हम विवेचन कर चुके हैं, इनके पिता का नाम महाराज ईशदेव था। इनका देहावसान संवत् १०२३ में हुआ था। इस पद्य में उल्लेख न होने पर भी यह कहा जा सकता है कि यह पद्य महाराज सोढदेव से संबद्ध है, क्योंकि इसके बाद इनके पुत्र दूलहराय की उत्पत्ति वर्णित है।

इन्हीं सोढदेव के विषय में कुछ पद्य हैं, जिनमें इनके विवाह तथा शृङ्गार का विवेचन है। इनके विवाह से इनकी माता बहुत प्रसन्न हुई थीं।

पद्य हैं—

"धीमान् नीतिविशारदो विदमित प्रोन्नद्ध दस्युव्रजो
भूपालेन्द्र विभाविताखिलविधिर्वाग्मी विदिभ्यत्खलः ॥
कन्दर्पाति मनोहरो नववधूहृद्वारि जहृत्करो
राजा रञ्जित सर्वलोक निवहो मातुर्वितेने मुदम्" ।।४२६।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इसके पश्चात् दो पद्य शृंगारिक है जिसमें नववधू का सज्जित होकर अपने वीर पति के पास आना तथा पति का उसके साथ विलास वर्णित है। रानी गर्भवती होती है तथा पुंसवनादि क्रियायें यथाविधि सम्पन्न की जाती हैं। श्री दूलहराय का जन्म होता है—

"दानप्रीत महो राभिहितगा रागाभि शर्माश्रया
देवी दर्शन लस्यमान महिमा देव्या विजज्ञे सुतः।
भूपालस्य शुभास्यया ग्रहवरैरावेद्य मानोदये
लग्ने लग्नपतौ वलीयसि पिता प्राचेथतं दूल्लहम्" ॥६३१॥

क्रमशः बाल्यकाल व किशोरावस्था को पार कर दूलहराय युवक बने। तरुणावस्था में उनकी आभा दर्शनीय थी। विवाह संस्कार सम्पन्न हुआ। जैसाकि इतिहासों में लिखा है—श्री दूलहराय ने एक ही विवाह किया था। वह भी मोंरा के चौहान रालणसिंह की पुत्री सुजान कुंवरी के साथ। चौहान रालणसिंह का सा (दौसा) पर आधा अधिकार था। इन्होंने इसे दूलहराय को दहेज में दे दिया था और कुछ सैनिक सहायता भी दी थी, जिसकी सहायता से दूलहराय ने मीणों व बजगूजरों को परास्त कर सम्पूर्ण दौसा अपने अधिकार में कर लिया था। ढूंढाड प्रदेश में इन कछवाहों का यह प्रथम स्थान था। इसे ही उन्होंने राजधानी बनाया था।

"वीर श्रीरुचिराश्रितो गुणगणैरूज्जृम्भमाणो बलै
निघ्नन् वैरिजनान् गजानिव बली पंचाननो हेतिमान।
राजेन्द्र प्रति नन्दितेन गुरूणा राजन्यकन्यां शुभां
चन्द्रास्यां प्रतिलम्भितोधिशु शुभे चन्द्रो यथा, रोहिणीम्" ॥६३५
"जित्वा सत्वर जित्वरो रिपुजनान् द्यौसा चलस्थायिनो
रम्यं स्थानमवेक्ष्य स क्षितिपजावस्तुं समीहां दधौ॥
आहूय स्वजनान् स्वकं च जनकं तद् गोपनाय प्रभुं
तथैवोर्ध्यं निजोजिसाधु विजयी प्रत्यर्थिनां निर्ययौ" ॥६३६

इसको जीतने पर श्री दूलहराय ने 'माची' पर अधिकार किया। "हितैषी" (जयपुर अंक) में 'जयपुर के राजवंश' का वर्णन करते हुए—पं० श्री हनुमान शर्मा (चोमूं) ने लिखा है—

"अपने पिता की आज्ञानुसार श्री दूल्हरायजी ने सर्वप्रथम 'माची' के मीणों पर चढाई की, जिसमें वे असफल रहे। उस फतह का मीणों ने एक जलसा किया। सब मीणे मदिरा पीकर जब मस्त हो रहे थे तब इन्होंने पुनः धावा किया और उन्हें मार भगाया, तथा उनके राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया। इस विजय के उपलक्ष में दूलहराय ने माची से तीन कोस पर एक देवी का मन्दिर बनवाया जो जमवायमाता के नाम से आद्यावधि वर्तमान है।" (पृ० ५१)

कुछ पद्यों में युद्ध का वर्णन किया गया है—

"सैन्यं शत्रुविभीषणं गजरथ व्यूहैर्हया रोहिभिः
वीरैर्भूरिपदाति वर्ग शतकैरग्रेसरैर्दुर्जयम्॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदायाभि जगाम धाम अपरं विभ्रत्स धीरोत्तमो
माची नामपुरी परैरविजितां जेतुं जनेशात्मज" ॥६३७॥

× × × ×

"आरूह्योरूजवं महाश्वमभितो वीरैरनेकैर्वृतो
भिन्दन्नापततोसिपाणि रहितान् वीरानिभारोहिणः।
कुम्भे दन्तयुगे च वाजिचरणानुच्चैरिभानां दधत्
वाहस्याशु जघान वारिणि गजो दीर्घास्तरङ्गानिव" ॥६४२॥

× × × ×

"एवं गर्जति सिंहराजतनये सिंहायमाने परं
धर्मं संबुवति व्यतीतसुकृता हित्वा रणं निर्घृणाः।
द्राक्सर्वेपि तिरोदधुर्निजबलैं रूद्धातन्दन्तीभिः ये
साम्भीभूय रणांगणस्थविजयी रेजे सहायोऽपि सः" ॥६४९॥

युद्ध में विजय प्राप्त कर भगवती की स्तुति करते हैं। इसमें भगवती की गुणमहिमा वर्णित है—

"या भीतेन विरंचिना परिणुता हन्तुं मधुं कैटभम्
विष्णुं बोधयितुं च नेत्रयुगलादाविर्बभूवार्चिकम्।
तस्यैषा विजयप्रदा निजपदं संसेदुषोऽधीश्वरी
पायान्तः शरणं रणाङ्गणगतानागत्य लोकाम्बिका" ॥६५२॥

अन्तिम पद्य है—

"या सर्वाशयवेदिनी गुणमयी वेदैरशेषैर्नुता
चिद्रूपा च परावरान्तरचरी चित्तादि संचारिणी।
सा माता जगतां मतिर्मतिमतां मां तिग्महेति क्षतं।
चक्षुर्गोचरतामुपेत्य सदया पातात्पतन्तं शिवा ॥६६०॥

स्तुति से प्रसन्न होकर भगवती ने दर्शन दिये। राजा सोढदेव के पुत्र दुलहराय को बालक के रूप में संबोधन करती हुई उसने राजा की प्रसंशा की और उसे आशीर्वाद प्रदान किया—

"एवं दुर्गतिहारिणी रणगते दुर्गा प्रणम्यावनौ
पित्सत्यंगुलिकास्ति तत्सामयुगे व्यादीयमानव्रणे। (?)
तस्मिन वीरवरे विमुह्यति महो विध्वंसितध्वान्तिका
भक्तत्राणमहाव्रतासकरुणा प्रादुर्बभूवाम्बिका ॥६६१॥"

+ +

"मापप्तो विभुहोऽपि तप्तहृदय प्रोदग्रतापावली
वेलेव प्रतिरोद्धमम्बुधि चलत्कल्लोकं भालामहम्।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वर्ते संप्रति सन्निधौ तव जवा देताजयश्रीरिव
श्रीमानेधिसमेधिताखिलबालो 'काले' ति सा तं जगौ ।।"
पीयूषायितमेत देव वचने तस्या निपीयोत्थितं
प्रोत्थाय प्रणनाम वर्णित गुण विश्वाम्बिकायां बुधैः ।।
श्रीमत्या चरणाम्बुजद्वयमिदं भाग्यं ममाहो महन्
मन्दस्येति विभावयन् दृढमति **श्रीसोढदेवात्मजः** ।।६६३।।"

× × ×

"प्रीतास्मि त्वयि निर्भयेन मनसा दुहृद्बलें भीषणं
पाथोधि तरसा विलोलितवति श्रीकोलविष्णाविव ।।
क्षात्रविक्षतविग्रहे प्यजहति त्रेयं स्वधर्मं परं
रक्तस्राव सुतोषितस्वकगुणा शृण्वेहि कोदन्तकम् ।।६६६।।"

उसी समय भगवान् नारद दिखाई दिये। राजा ने उन्हें देखकर प्रणाम किया। श्रीनारद मुनि ने भी भगवती के अर्चना के लिए ही उपदेश दिया—

"दैवादेवतदैवदेवपथगो दृग्गोचरो नारदो
वीणापाणिरुदाननीकृतमृगो वेगोन्वममहीसिगः।
दृष्टो हृष्टतनूरूहेण सहसा बेधो भुवाभ्यर्थितो
लब्धार्थी कृतजात दर्शन जनो नत्वा मिनिन्ये भुवम् ।।६७०।।

मुनि नारद ने उपदेश दिया—

"शक्ति सर्वविधायिनीं भजविभो! भक्तप्रियां शक्तये
भ्रातमतिरमातुरर्न्तिशमिनीं विभ्राजिनीं जत्मिनाम् ।
सा शीघ्रं मनसा धृतांघ्रिकमला विध्यच्युतेशार्चिता
चिन्ता सन्ततिमोचिनी भगवती कर्त्तृ हतेमीक्षितम् ।।७२।।"

राजा दूलहराय ने पुनः भगवती की आराधना प्रारम्भ की। सन्तुष्ट होकर भगवती ने उसे दर्शन ही नहीं दिये, अनेक वरदान भी दिये। राजा ने उसका मन्दिर बनवाकर वहाँ स्थापित कर दिया। यह मन्दिर "जमुवायमाता" के नाम से प्रसिद्ध है, जो माची से ३ कोस दूर है। रामगढ़ के बन्ध से कुछ दूर, अनुमानत २ मील नीचे 'जमुवा रामगढ़' नामक ग्राम है, वहीं देवी का प्राचीन मन्दिर है।

"श्रीभिर्मिश्रित मेनमाश्रुतवचा माता कृतानुग्रहा
गुह्यानुग्रहणोचितां धियमथ प्रागल्भ्य गर्भां मुदा ।
दिव्यां च प्रतिभां दधानमधिकां विक्रांततां कुर्वती
भूयोवाचमिमामुवाच रूचिरां तं सर्व लोकेश्वरी ।।६७६।।"

× × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'याहि त्वं विजहीहि संशयहतां चिन्तां सुचिन्तामणौ
चिन्तान्तर्निहिते हिते पदयुगे याभ्यर्हिते मामके ।
साहं पूर्विक मापतन्ति सहसा संचिन्तितार्थालयो
यर्थार्था विलयो पयः सुनिगतो नश्यन्ति सर्वेऽरयः ।।८२।।"

× × ×

"तत्सर्वं सतिशम्य रम्य सुषमे देवीं स्वनामाङ्कितां ।
सद्यो जाम्बावतीं निवेश्य भवने हृद्याकृति कल्पिते ।
देवी वागमृतस्तुतिग्रह वृहत्स्फूर्तिप्रभावोदयो
धुर्यो निर्धुतसंशयोधृतजयो धीयोगिनामुद्यौ ।।८४।।"

पं० श्री हनुमान शर्मा ने अपने जयपुर के इतिहास में महाराज दूलहराय का परिचय देते हुए लिखा है—

(१) 'वंशावलियों में लिखा है कि माँची की पहली लड़ाई में दूलहरायजी मूर्च्छित हो गये थे। तब वहां की 'बुढवाय' माता ने सपने में कहा कि "डरो मत, दुबारा चढ़ाई करो। मरी हुई सेना सजीव हो जायगी और तुम जीतोगे।' यह सुनकर दूलैराय चैतन्य हुए और दारू पीये हुये मीणों को मारकर मांची में अधिकार किया।" (पृ०-१५)

(२) "मांची विजय की यादगार में दूलैरायजी ने मांची से तीन कोस पर नांके में देवी का नवीन मन्दिर बनवाया था और उसको 'बुढवाया' के बदले 'जमवाय' नाम से विख्यात किया था। इस अवसर तक दूलैरायजी दौसा ही रहे थे। किन्तु 'मांची' में अधिकार हो जाने से वहाँ रामचन्द्र जी के नाम पर "रामगढ़" बसाया और वहीं रहने लगे।" (पृ० १६)

म० सवाई जयसिंह तृतीय के सभासद पं० श्री सीताराम शास्त्री पर्वणीकर ने अपने सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक महाकाव्य में उन घटनाओं को इस रूप में उपस्थित किया है—

"इत्थं स्थिते रात्रिरभून्निशीथे देवी पुरोऽस्याविरभूद्दयालुः ।
आपन्नदीनोद्धरणव्रतं यन्न देवतानामिदमस्ति चित्रम् ।।२७।।
उत्तिष्ठ वत्सेति वचो निशम्य देव्याःकुमारः सहसोदतिष्ठत् ।
उत्थाय तां बुद्धद्वयनुसारमेव स्तोतुं प्रवृत्तो व्यथितोऽपि देवीम् ।।२८।
नमोस्तु ते देवि विशालनेत्रे कृपानिधे त्वं शरणागतान्नः ।
पाहि प्रशंस्यासि महेन्द्रपूर्वैः सुरैर्न चेत्तर्हि कुतो मनुष्यैः ।।२९।।
अस्याः प्रतीरे खलु वाणनघाः मूर्तिं महीयां यमवोय नाम्नीम्।
विधाय संस्थाप्य यथावदेनां पूज्यामविच्छिन्नतया य यजस्व ।।३२।।
ततो यथा वैभवमेव तस्या निर्माय देव्या नरदेवसूनुः ।
स्वं मन्दिरं तां यमवायदेवीमास्थापयामास यथावदर्चाम् ।।३८।।

इत्यादि

(जयवंश महाकाव्य-प्रथम सर्ग०पृ०३-५)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'साहित्य-रत्नाकर' के संपादक स्व० श्री सूर्यनारायण जी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने 'मानवंश महाकाव्य" लिखना प्रारम्भ किया था। यह भी एक ऐतिहासिक काव्य है। इसके कुछ ही सर्ग प्रकाशित हैं। उपर्युक्त घटनाओं के संबन्ध में उनका साक्ष्य इस प्रकार है—

"अथैकदायं धृतसैन्यसंघो मञ्चादिकान् ग्रामगणान् विजित्य।
ग्राहो यथा हन्ति सुपृष्टमीनान तथव मीनान् तरसा जघान ।।२०।।
(मानवंश काव्ये द्वितीय सर्गे-पृ० ५१)

"भुवः पतिर्दूलहराय वीरो विजित्य माञ्ची विजय प्रहृष्टः।
गिरि प्रदेशे निजवंशदेव्या विनिर्ममे मन्दिरमुच्चशृङ्गम् ।।१।।
देव्यासु 'बुढवाय' इति प्रसिद्धं नामैष 'जमवाय' इति प्रचक्रे।
जम्वायमातुस्तु नितान्तरम्यं तन्मन्दिरं ख्यातमिहाद्य यावत् ।।२।।
यद्यप्यमुष्मिन् समये स द्यौसां समध्यतिष्ठन्नृपदूलहरायः।
तथाप्यहो रामगढं गरिष्ठं न्यवासयत् पत्तनमेव शूरः ।।४।।
कुर्वन् स्थितिं रामगढे स वीरः स्वराज्यसीमापरिवर्द्धनेच्छुः।
खोहं च गेटोरमहो विजित्य तं झोटवाडं सहसा विजित्ये ।।५।।"
(संस्कृत रत्नाकर—वर्ष८।संचिका ३, अक्टूबर १६४१ पृ० ८८)

"इतिहास-राजस्थान" में श्री रामनाथ रत्नू ने लिखा है—"सोढदेव जी खोह विजय तक दूलहराय के साथ रहे थे। खोह में जाने पर उनकी मृत्यु हुई थी। खोह एक प्रकार से आमेर का ही अंग है।"
(पृष्ठ ८८)

इस ग्रन्थ में भी ऐसा ही वर्णन मिलता है। खोह पर अपना अधिकार कर श्रीदूलहराय ने अपने पिता को दौसा सूचना भेजकर वहीं बुला लिया था और उनकी सेवा में रहने लगा था। वहीं श्रीसोढदेव का परलोकवास हुआ था—

तातं दूतमुखेन वृत्तमखिलं सम्बोध्य साम्बं मुदा
देवी वागमृत स्तुतिप्लुतमतिः मित्रैसतमेतो मितैः।
कोशादात्तधनो निधेरिव भृशं कर्तुं स वै मण्डपं
गण्डो भुज्जदलि व्रजैर्गज वरैरश्वैः स वीरैः ययौ" ।।६६५।।

× × × ×

"धृत्वा सत्त्व समूर्जितो हृदि शुभं देवी पदाब्जद्वयं
खोदेश प्रमुखाः वरानविकलं प्रोत्खय सर्वान् खलान्।
राज्यं प्राज्यतरं विधाय जनकं सत्सूनुतानुत्तिदतं
कुर्वन् गर्वं विवर्जितोर्जितयशा रेजे स राजात्मजः ।।६६८।।

श्री दूलहराय के पुत्र का नाम "काकिल" था। काकिल के जन्म का वर्णन इस पद्य से प्रकट किया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"तस्य सान्वय वर्द्धनस्य दयिता देवी मनोरञ्जिनो
देवाधीश समद्युतेः सम भवति स्मेरस्फुर होहदा ।
काले सा सुषुवे जयन्त सुषमं शर्म प्रकाशे ग्रहै-
रूच्चस्थै रभिसूचितै स्थितितमो व्युत्सारि दीप्ति सुतम् ।।७०१।।
अन्या **काकिल** सोष्यते कुलवधू रूद्दाम धामाद् भुतं
बालं लोक मनोहराक्तिमिति प्रोचुर्नरेश जनाः ।
सोऽप्येनं किल **काकिला**मिधमथा संकथ्य सार्थामिधं
देव्यन्या मम काकिलेति नृपतिर्यातिस्म चित्ते मुदम् ।।२।।

(३) **महाराज काकिलदेव** (माघ शु० ७ सं० १०६३ से वैशाख शु० १० संवत् १०६६)

अपने पिता श्री दूलहराय की आज्ञा लेकर महाराज काकिल ने 'भाण्डारेज' को जीतने के लिए प्रस्थान किया था । लिखा है—

ताताज्ञां परिगृह्य **दैवत**मपि स्मृत्वा च नत्वा द्विजान्
वृद्धा नष्यपरान् परन्तपतति र्वाहानि वृन्दैर्भृताम (१) ।
सेनां **बोध्वरैर्नयन्न**पसुतो भीमप्रभां पतिभिः
भोण्डारेजि पुरीममण्डित वपुर्वीरो विजेतुं ययौ ।।८।।

'जयवंश महाकाव्य' में श्रीसीताराम भट्ट पर्वणीकर ने भी इस घटना की पुष्टि की है। वे लिखते हैं—

"राजा कदाचित्खलु सौढदेविग्रं हीतुकामोऽजनि **भाण्डरेजीम्** ।
स्वभाव एवैष हि विक्रमस्य युयुत्सुता प्रत्यहमुद्भवेद्यत् ।।१६।।
विचार्य चञ्चद् भुजदण्डवीर्यं नृपोत्तमः काकिलमादिदेश ।
कुमारविक्रान्तिदिहक्षुचित्तः स तु प्रणम्याथ युधे प्रतस्थे ।।१७।।
(द्वितीयसर्ग— पृष्ठ— ८)

इसके पश्चात् महाराज दुलहराय की दक्षिणयात्रा का उल्लेख है । यह वर्णन प्रायः सभी ऐतिहासिक ग्रन्थों में मिलता है । परन्तु इसमें कुछ मतभेद है । 'वंशावली' में एक स्थान पर लिखा है कि— 'आयुष्य के अन्त में दुलैरायजी ग्वालियर के राजा की अर्जी पर वहां गये थे और दक्षिण से आये हुए शत्रुओं को परास्त कर ग्वालियर के जयसिंह को सहायता दी थी ।" एक अन्य वंशावली में लिखा है कि— "ग्वालियर से दुलहराय घायल होकर आये थे और खोह में आकर संवत् १०६३ में परलोकवासी हुए थे ।" वंशावली की तीसरी प्रति के ११वें पृष्ठ पर लिखा है कि—"दुलैरायजी ग्वालियर के युद्ध में विजयी हुए थे और वहीं मरे थे ।" 'वीर विनोद' में भी ग्वालियर में ही मरने का उल्लेख है । राजस्थान के इतिहास लेखक कर्नल जेम्स टाड ने तो इन सभी से भिन्न लिखा है तथा मीणों के द्वारा उनकी मृत्यु का उल्लेख किया है । वे तो काकिलजी की उत्पत्ति भी दुलहराय के मृत्यु की पश्चात् बतलाते हैं जो किसी भी ऐतिहासिक ग्रन्थ या प्रमाण से पुष्ट नहीं है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रीसीताराम भट्ट ने जयवंश महाकाव्य में लिखा है कि ग्वालियर के राजा द्वारा बुलाये जाने पर दाक्षिणात्यों से युद्ध करते हुए ही महाराज दुलहराय की मृत्यु हुई थी ।

पतिर्गवालेर पदस्य वार्तामश्रावद्दूतमुखेन राज्ञे ।
इदं पदं ते बलिनो ग्रहीतुकामाः प्रसह्य चेति हि दाक्षिणात्याः ।।
हेतोरतस्त्वं समुपेहि शीघ्रं तेभ्यः पदं स्वं परिपालय त्वम् ।
वयं न तादृग्बलिनो यतःस्युः पराजितास्मे विमुखाभवेयुः ।।
गत्वा गवालेरमसौ नरेन्द्रसौर्दाक्षिणात्यैर्बलिभिस्त्वनन्तैः ।
शास्त्रास्त्र विद्यानिपुणैः ससेनैरयुद्ध दोर्दण्डपराक्रमेण ।।३।।
स छिन्नभिन्नापघनो घनोऽपि पेपीय्यमानश्रुतशोणितोस्त्रैः ।
लेभे महेन्द्रादवनीमहेन्द्रः सत्कारमर्हत्तममाशु नाकं ।।३६।।

(द्वितीय सर्ग—३१ से ३६ श्लोक पृष्ठ–६/१०)

'मानवंश महाकाव्य' में श्री सूर्यनारायणजी शास्त्री व्याकरणाचार्य ने लिखा है—

'दुर्गे नवीने निवसन् प्रवीरो भुञ्जान आसीद् विविधान् सुभोगान ।
अथैकदापत्रमवाप दीनं **ग्वालेरराजस्य जयाभिधस्य** ।।६।।
लेखीऽभवत् तत्र तु राजपत्रे यद् **दाक्षिणात्या** रिपवः सुधीराः ।
हर्तुं पतन्ते मम राज्यमेतत् संत्रायतामेत्य भवान् सुशीघ्रम् ।।७।।
लब्ध्वैव संदेशमिमं स वीरः स्वदत्तराज्यं परिशंक्य नष्टम् ।
तत्त्राणहेतोः स्वयमेव गत्वा ग्वालेरराजून् तरसा जघान ।।८।।
जातो जयी यद्यपि दूलरायरे वीराङ्कशस्त्रक्षतपूर्ण देहः ।
स्वल्पैर्दिनैरेव जगाम धाम तद् यत्र वीरेतरसं प्रवेश्यम् ।।६।।

(मानवंश– तृतीय सर्ग– संस्कृतरत्नाकर वर्ष ८ संचिका ३ पृ० ८८)

इस 'पृथ्वीराज महाकाव्य' में यह वर्णन इन पद्यों से प्रस्तुत किया गया है । इसमें भी यही बताया गया है कि राजा दुलहराय की मृत्यु ग्वालियर में ही हुई थी । अतः यही बात प्रमाणित है—

"राजन् दक्षिणदिक्पतेर्बलवतो योधाश्चमूचारिणो
राज्यं जातु जिघृक्षवो नृपशवो गर्जन्ति संपित्सवः ।।
भूपालेशकमर्दिनोऽपि भवतो भूपालसिंहस्य तत्
नीतिज्ञैरवधीर्यता यदहिते सावज्ञतैवाज्ञता ।।१५।।
श्रुत्वा विश्रुतपौरुषो नृपवरो दूतस्यवाचं रुषो
वेगं संशमयान्निषोद्गत मिति प्रत्युक्तिमुच्चैर्जगौ ।
क्षात्रं धर्ममिहोज्झतामितिवचो भीत्यै न च क्षत्रिया
वीक्ष्यन्ते निजजीवितक्षयमपि क्षात्रैकरक्षापराः ।।१६।।
"आपत्य प्रणिहत्य यान्ति विमुखादूरादरं खादिव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रत्यापत्यपुनर्वियान्ति च परागृष्टैर्विनष्टानुगाः ।
एवञ्चञ्चलवित्रमां बहुतमास्ते दाक्षिणात्या भटा-
दृष्टो चण्डपराक्रमस्य नृपतेश्चक्रे असं विच्युताम् । ।२३।।
"तं संहत्य रणे निपत्य नृपतिं हेति प्रणीतोन्नतिं
चञ्चद्द्वारकचन्द्रहासशतकैरेकैकश सर्वतः ।
घ्नन्तं भूरिबलाम्बुजंघ्नुरनयं रंहास्विबाहाजवा-
दुद्विग्नाविमयं भयंकरममुं ते दाक्षिणेशानुगा ।।२९।।
"कृत्वासौ जनकस्य चोत्तरविधि यातस्य दिव्यं पदं ।
राज्यं प्राज्यतमं विधाय विविधैर्भूयो बलैर्दुर्ग्रहम् ।।
आश्वास्य स्वजनानुपेत्य ग्रहिणीं हृद्य प्रभारोहिणीं ।
बुद्ध्वा दोहदशालिनीं प्रमुदितो युद्धाय बुद्धि दधौ ।।३२।।

अपनी शक्ति का प्रदर्शन कर पिता की मृत्यु के पश्चात् महाराज काकिल ने आमेर को जीता और खोह के स्थान पर इसे राजधानी बनाया। श्री काकिल का राज्य काल ३ वर्ष का ही रहा, परन्तु इतिहास में आपका नाम प्रसिद्ध है। आपने आमेर को राजधानी बनाने के अतिरिक्त आमेर में अम्बिकेश्वर महादेव की स्थापना की। यह मन्दिर आज भी विद्यमान है। गालवाश्रम (गलता) के पर्वतों में पृथ्वी में विद्यमान, अनेक नागों से वलयित इस मूर्ति को लाकर भगवती के आदेश से आमेर में स्थापना की थी। इस संबन्ध में इस काव्य में लिखा है—(भगवती काकिल को कह रही है)

"तावत्तज्जन केरितेव जननी लोकाम्बिका त्र्यम्बका
रोचीरोचित लोहितांचित समिद्रङ्गा शुतङ्गाभिमाम् ।
आविर्भूय तदङ्गसङ्गतिहितप्रेक्षा समक्षाहितं
प्रोचे, काकिल! नाकिलम्भित पदा त्वां संपदा योजये ।। ७३६ ।।
भूमीगूहित मम्बिकेश्वर मरं पातार मभ्यर्च्यतां
दातारं च दुराय वस्तु वितते धीतारमेतस्य च ।
हर्त्तारं सुमहापदां त्रिजगतां भर्त्तारमाविष्कुरू
क्रूराणामनवेक्षण क्षममथ स्वं दुर्गमारात् कुरू ।। ३७ ।।
पावन्यां दिशि गालवाश्रम गिरेर्वन्यान्तराले गिरौ
वाराधार महावटाभिध सरो रोधौ महीगूहितम् ।
गौरेकापयसामिबिञ्चति परं लिङ्गं सलिङ्गं मया
यत्तेवादि तदादिहेतुरहितध्वंसे च शर्मोदये ।। ३८ ।।
उज्जीवद्बलसंयुतो व्रजगिरा प्रातर्ममेति स्फुटं
विध्वस्तं कुटिलाशयैरकुटिलं प्रोज्जीव्य चादिश्यताम् ।
सा तेन प्रणता यथा मतिनुता माता थ विश्वस्थतं ।
वाचाश्वास्य सुधारुचाँ सुचतुरं भक्तिप्रियान्तर्दधे ।। ३९ ।।

× × × ×

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

'देव्यावाच मनुस्मरन् मृगयया वीरैरनेकैवृतो
गत्वा तत्पदमाप संपदवधिं तल्लिङ्गमालिङ्गितम् ।
भीमैर्भोगिवरैर्मणि धरैर्निभिद्यभूमि दृढा
माविर्भाव्य महोपचार निचयैस्संपूज्जयामास सः' ।।७४२।।

'जयवंश महाकाव्य' में भी इसी वृत्त को प्रस्तुत किया हैं । अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों में अम्बिकेश्वर के प्राप्ति स्थान के विषय में कुछ भी विशेष नहीं बतलाया गया है । फिर भी जमीन के अन्दर से ही इस मूर्ति को निकाल कर स्थापित किया गया था—इस विषय में सभी एक मत हैं । श्री पर्वणीकरजी लिखते हैं—

"मदाज्ञयेतो रचयाम्बिकापुरीं 'पुरीं' महेन्द्रस्य पराजये तया ।
तथैकपिङ्गीमपि सम्पदंचितां दशाननीयामपि हाटकोच्चिताम् ।। २२।।
भुवोऽन्तरालीनमिहै व यत्नतो नरेन्द्र ! निस्सार्य तमम्बिकेश्वरम् ।
प्रतिष्ठितीकृत्य यथावदर्चयेः जयस्ततस्तेऽधिरणं भविष्यति ।। २३।।

× × × ×

'तत्राम्बिकेश्वर मथार्च्य मशेषदेवैः सन् मन्दिरे धरणितो नृपतिः प्रतापी ।
उद्धृत्य सद्विजवरैः प्रयतैः प्रतीतैः तं प्रत्यतिष्ठिपद थान्वहमार्चिचच्चा ।।३६।।

(जयवंश—तृतीयसर्ग—२२ से ३६ श्लोक, पृष्ठ १३—१५)

श्री सूर्य कवि की कल्पना है कि भगवति पार्वती भगवान शिव के बिना सन्तुष्ट नहीं रहेगी—इसी विचार से काकिल ने आमेर में अम्बिकेश्वर की स्थापना की थी—

"अभीष्टदात्री मम सा हि दुर्गा विना शिवं स्थास्यति न प्रतुष्टा ।
इतीव संचिन्त्य तमम्बिकेशं शिवं समस्थापयदत्र पुर्याम्" ।।
(मानवंशकाव्य—तृतीयसर्ग २१ वां पद्य पृ० ८६)

इनके पश्चात् इनके पुत्र श्री हणूदेव आमेर के शासक बने ।

४. **श्री हणूदेव** (वैशाख शु० १० सं० १०६६ से कार्तिक शु० १३ सं० १११०)

यद्यपि इनकाशासन काल श्रीकाकिल की अपेक्षा बहुत अधिक था, इन्होंने कुल १४ वर्ष राज्य किया था, तथापि इनके शासन काल में कोई विशेष घटना नहीं हुई । किसी भी इतिहास में इनके जीवन पर अधिक विवेचन नहीं मिलता । इनके पुत्र का नाम था—

५. **श्री जान्हड** (कार्तिक शु० १३ सं० १११० से चैत्र शु० ७ सं० ११२७)

इनके अनेक नाम थे । इस काव्य में इन्हें "जानुग" नाम से व्यवहृत किया है । यों इनका नाम जनेदेव भी मिलता है । इन्होंने भी १७ वर्ष राज्य किया, परन्तु इनके समय में भी कोई विशेष घटना नहीं हुई थी । 'पृथ्वीराज विजय' नामक इस काव्य में श्री हणूदेव एवं श्री जानुग के लिए एक ही श्लोक लिखा गया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"सूनुस्तस्य **हनोत को** गतवति श्रीकाकिले भूपतौ
देव्याधाम भुवंशशास, बलवानुग्रप्रतापश्चिरम् ।
तस्य श्री बलभूषिते ऽमरपुरं याते च तस्मिन् महा-
सूनुर्जानुग बाहुराहव जयी सभ्रातृकः संययौ" ।।७४४।।

इनके पश्चात् प्रजवन (पजवन या पजोन जी) उत्तराधिकारी बने ।

६. श्री पजवन जी (चैत्र शु० ७ सं० ११२७ से ज्येष्ठ कृ० ३ संवत् ११५१)

महाराज पजवन जी राजनीति तथा युद्धादि में निपुण और साहसी होने के कारण हिन्दू-सम्राट पृथ्वीराज चौहान के पंचवीरों में से एक थे—ऐसा प्रसिद्ध है । पृथ्वीराज रासो में महाकवि चदवरदाई ने इनका ओजस्वी वर्णन किया है । 'पृथ्वीराज विजय' काव्य में इनका वर्णन एक ही पद्य में किया है—

श्रीमांस्तस्य सुतो बली **प्रजवनो** नामस्फुरद् विक्रमे
भर्तृ विक्रम यत्कलासु चतुरो हर्षं प्रतेने गुरौ ।
गर्जद्वैरिगज प्रभञ्जन हरिर्मोहाब्धि मज्जत्तरि-
स्स्वर्याते पितरि प्रभासवितरि त्राता बभूवावनेः ।।७४५।।

इनके एक ही पुत्र था, जिसका नाम मलयसी जी (मलेषी) था ।

७. श्री मलयसीजी (ज्येष्ठ कृ० ३ सं० ११५१ से फाल्गुन शु० ३ सं० १२०३)

अपने पिता के समान ये भी वीर व पराक्रमी थे । श्री चन्दवरदायी ने इनकी भी प्रसंसा की है । सभी इतिहासों में यही लिखा है कि पजवनजी के एक ही पुत्र था, परन्तु इस काव्य में चार अन्य पुत्रों के विषय में भी संकेत है ।

"मल्लेषी तनयो बभूव भयदो मल्लो व्रतो द्वेषिणां
चत्वारस्तनया बभूवुरपरे तस्य प्रभावोज्ज्वलाः ।
राजासौ निबवन्ध युद्धविजितं **नागौरिका**धीश्वरं
तद्राज्यं निजसाच्चकार मिहिरो भूचारिपाथो यथा" ।।७४६।।

"कन्नौज युद्ध के एक वर्ष पश्चात् मलयसीजी ने नागोरगढ गुजरात, मेवाड़ तथा मांडू को जीता था । श्री पर्वणीकरजी ने 'जयवंश महाकाव्य' में लिखा है—

"उपेत्य **नागौर** मनल्प विक्रमस्तदीश गौरीपतिना नृपः समम् ।
अयुद्ध लक्षत्रय सैन्य संयुजा स्वयं पर पञ्चसहस्त्र सैनिकाः ।।१०।।
स्व विक्रमोपायविधेर्व्यधात्तमां स **गुर्ज्जरीये** ऽसुलभे ऽपि नीवृति ।
पदं स्वकीयं निहितं हितं ततं न कस्य विक्रान्तिबलं बलीयसः ।।१७।।
कदाचिदत्यन्तरणोद्धतोद्भटः क्षमापतिः प्राप्त महेन्द्र विक्रमः ।
मिवाडदेशाधिपतिं ससेनक रणेषु धिक्कृत्य पदं स्वकंन्यधात् ।।१६।।
(जयवंश, चतुर्थ सर्ग—१० से २० तक)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

नागौर विजय तक श्री प्रजवनजी जीवित थे। यहां जो श्लोक दिया गया है, उसमें श्री मलयसीजी के उत्तराधिकार प्राप्ति की पुष्टि करता है। यहां संवत् की समानता तो है परन्तु तिथि की समानता नहीं है। इतिहास में उनके शासन प्रारम्भ करने की तिथि ज्येष्ठ कृष्णा ३ है जब कि इस काव्य में माघ शुक्ला ६ है। संवत् के विषय में श्री हनुमान शर्मा ने 'जयपुर के इतिहास' (नाथावतों का इतिहास) पृष्ठ-२५ पर लिखा है—

"(१) संवत् ११५१ में अपने पिता (पजोनजी) के उत्तराधिकारी हुए।....(३) कन्नौज युद्ध के एक वर्ष बाद मलैसीजी ने नागौर गढ विजय किया और गुजरात मेवाड़ एवं मांडू आदि में अपनी वीरता दिखलाई।"

'जयपुर की वंशावली' में भी ज्येष्ठ वदि ३ सं० ११५१ मिलता है। इस काव्य में यह श्लोक तिथि का संकेत करता है—

"वर्षे विक्रमतो **यतीन्दुशरभूचन्द्र** प्रमेये मधौ
११५१
शुक्ले धूनित धन्वनि ध्वनदलिज्ये जे, **नवम्यां** तिथौ।
लब्ध्वा राज्यमसौ विधातुमधिकं वीरश्चमत्कारिधा—
युद्धाय प्रबलैर्बलैरनुगतो गर्जत्पुरा **निर्ययौ**" ॥७४७॥

अग्रिम पद्य में मलैसीजी का गुजरात विजय का उल्लेख है—

"तस्मिन् भूपवरे विभुज्य विभवान् पुण्येन याते दिवं
'मल्लेषी' पदमाप तस्य तनयो ज्यायानजय्योरिभिः।
जित्वा गुर्जरराजमानिचतुरो निर्जित्य भूपान् पराम्
बाहूदर्जित भूरिकीर्ति कनको भुङ्क्ते स्म भौमं सुखम्" ॥७४८॥

इनके ६ पत्नियां तथा ३२ पुत्र हुए थे। 'जयपुर के इतिहास' में श्री हनुमान शर्मा ने लिखा है—

(४) "इनके १ मनलदे (खींचणजी) राव अंतल की, २ महिमादे (सोलंखणी) राव जीमल की ३ नरमदे (देवडीजी) देवा देवडा की, ४ बडगूजरजी, ५ चौहाणजी, ६ दूसरा चौहाणजी—ये ६ राणीं थी। इनके (१) बीजल, (२) बालो (३) सीधण (४) जेतल (५) तोलो (६) सारंग (७) सहसो (८) हरे (९) नंद (१०) बाघो (११) घासी (१२) अरसी (१३) नरसी (१४) खेतसी (१५) गांगो (१६) गोतल (१७) अरजन (१८) जालो (१९) बीसल (२०) जोगो (२१) जगराम (२२) ग्यानो (२३) बीरम (२४) भोजो (२५) बेणो (२६) चांचो (२७) पोहथ (२८) जनार्दन (२९) द्रुदो (३०) गबूदेवो (३१) लूणो और (३२) रतनसिंह ये बत्तीस बेटे थे।"

'इतिहास राजस्थान' में लिखा है कि मलैसी के ३२ पुत्रों में से अधिकांश तो कछवाहे रहे और कुछ ने दूसरी जाति ग्रहण करली।' (पृ० ९२)

इस काव्य में भी इनका उल्लेख संकेत में है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"तस्यारीन् बलिनो बर्जैजितवतो द्राङ्मालन्वेद्रादिकान्
कीर्तिदिग्वलयं च कारधवलं ज्योत्स्नेव भूर्युज्ज्वलाः ।
षड्भार्यस्य बभूवुरुग्रमहसो द्वात्रिंशदात्मोद्भवा—
भावज्ञा भुज वैभवार्जितधना धन्यं च तं चक्रिरे" ।।७४६।।

८. **महाराज बीजलदेवजी** (फाल्गुन शु० ३ सं० १२०३ से आषाढ शु० ४ सं० १२३६)

इनके जीवन की कोई उल्लेखनीय घटना नहीं है। इनके समय में विद्वानो का बडा सम्मान था। इनके समय में अनेक ग्रन्थों का निर्माण भी हुआ होगा, परन्तु अभी तक पता नहीं चल सका है। इस काव्य में लिखा है—

"स्वर्याते जनके, पदेस्य **बिजलो** ज्यायान्सुतो मंत्रिभिः
नीतिज्ञैरुपवेशितो मतिमतां मान्यो बभूवौजसा ।
दीप्तो बह्निरिव द्विषां विषधरो गर्तोन्दुरूणामिव
श्रीदोर्दण्डधरो विदामविदुषां जिष्णुर्जिगायाहितान्" ।।७५०।।
"विद्वद्भिर्धनदानमानिततया सुप्रीत चित्तैर्भृशं
बालानां कुलयांबभूव कलया बोधाय शब्दावले ।
ग्रन्थं सुग्रथितं विभक्ति गुणितैर्बोध्यैः समासादिभिः
धीमानुद्धतिवर्जितोर्जितयशा राजा जुगोपावनिम्" ।।७५१।।

इनके तीन पुत्र हुए थे, जिनमें ज्येष्ठ पुत्र का नाम श्रीराजदेव था। उसे राज्य सोंपकर श्रीबीजलदेव दिव्य धाम चले गये—

"भुक्त्वासौ चिरमत्र मन्त्रचतुरैर्द्वित्रैरमात्यैर्धृतो
राज्ये दुर्जयतां गते जितरिपुश्शर्माणि भौमानि सः ।
दिव्यं धाम जगाम भीमवपुषे राज्यं प्रदाय स्वकं
पुत्राय प्रतिगर्जिशत्रु जयिने तज्ज्यायसे भूपतिः" ।।७५२।।

९. **महाराज राजदेव** (आषाढ शु० ४ सं० १२३६ से पौष कृ० ६ सं० १२७३)

इन्होंने आमेर का जीर्णोद्धार किया था। अपने दोनों भाइयों के साथ प्रेम पूर्ण रहते हुए इनका समय भगवान् अम्बिकेश्वर महादेव की पूजा में बीता था। इनके ६ पुत्र थे जिनमें श्री कील्हणजी सबसे बड़े थे। इस काव्य में लिखा है—

"भ्रातृभ्यांमुदितो भृवं स बुभुजे श्री **राजदेवो** दिवा
सस्पर्द्धामिव संविधाय नगरीम् आम्बेरिकामम्बिकाम् ।
संपूज्यार्यितमाम्बिकेश्वर महादेवेश्वरौ मां युवां
सन्मातापितरौ प्रयातमितौ (?) संप्रार्थ्य तस्थौ पुरः" ।।७५३।।

श्री कील्हण के जन्म का वर्णन करते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"राज्ञी तस्य मनोज्ञलक्षणयुतं सूनुं विशालेक्षणा
वर्षान्तक्षणदा पतिद्युतिभरा भूरक्षिणः सत्क्षणे ।
विक्षीणीकृतं दीप दीप्तिमतुलं दत्तक्षणं वीक्षिणां
भूरक्षा सुविचक्षणं प्रसुषुवे पद्मेक्षणं **कीलनम्**" ।।७५६।।

१०. **महाराज कील्हणजी** (पोष कृ० ६ सं० १२७३ से कार्तिक कृ० ९ सं० १३३३ तक)

श्री कील्हणजी के समय चित्तौड़ तथा मालवा, गुजरात में बड़े शक्तिशाली शासक थे। ये उनके पास कुम्भलमेर रहा करते थे। यह 'वीर-विनोद' तथा 'महाराणा रायमल्ल के रासे' में लिखा है। इनके दो रानियां थीं जिनसे ६ पुत्र हुए थे। ज्येष्ठ पुत्र का नाम 'कुन्तिल' था जो उत्तराधिकारी बने थे।

"जयपुर का राज्यवंश" (हितैषी जयपुर—अंक, पृ० ५५) तथा "जयपुर का इतिहास" (नाथावतों का इतिहास) पृ० २९।३० पर लिखा है—

"इनके एक राणी भावलदे निर्वाणजी खंडेला के रावत देवराज की। इनके कुन्तलजी हुए। दूसरी राणी कनकादे चौहाणजी। इनके २ पुत्र हुए।"

इस अवतरण से दो रानियां होना तो सिद्ध होता है, परन्तु पुत्रों की संख्या ३ ही बनती है। "वीर-विनोद" में ३ पुत्रों का उल्लेख इस प्रकार है—

"१. **कुन्तलजी**—राज पायो। २. **अखैराज**—जिसके वंशज धीरावत कहलाते हैं। ३. **जसराज**—जिनके टोरडा और बगवाड़ा के जसरा पोता कछवाहा कहलाते है।

केवल एक वंशावली में ६ पुत्रों का उल्लेख है, जिनमें तीन नाम तो 'वीर-विनोद' के है ही, इनके अतिरिक्त (४) सैंबरसी (५) दैदो तथा (६) मंसूड और हैं। मंसूड के वंशज टांट्यावास के बंधवाड़ कछवाहे हैं। यहां काव्य में ६ पुत्रों का उल्लेख इस प्रकार है—

"रेमेऽसौ **रमणीद्वयेन** रहसि श्रीमानुतीशद्युति—
र्भूमि र्भूरि जुगोप जिष्णु विभवो विष्णु स्त्रिलोकीमिव ।
षड्सनुस्सनृपो निहत्य च रिपूनाराध्यं देवौ भवे
लब्ध ज्ञान महोदयो द्विजवराल्लेभे दुरायं पदम्" ।।७५८।।

उपयुक्त विवेचन से सिद्ध है कि श्री कुन्तलजी ज्येष्ठ पुत्र थे।

११. **महाराज कुन्तलदेवजी** (कार्तिक वदि ९ सं० १३३३ से माघ कृ० १० स० १३७४)

इन्होंने आमेर में 'कुन्तल किला' बनवाया था, जो आज 'कुन्तलगढ' के नाम से प्रसिद्ध है। इनके ५ रानियां तथा १३ पुत्र थे। 'जयपुर के इतिहास'—पृष्ठ ३० पर लिखा है—

"इनके राणी (१) काश्मीरदेजी, चौंडाराव जाट की बेटी (२) रैणादे (निर्वाणजी) जोधा की बेटी, (३) कनकादे (गौडजी) (४) कल्याण दे (राठोडजी) वीरमदेव की बेटी और (५) बडगूजरजी पूरणराव की बेटी थी।"

वंशावली की एक प्रति में पुत्रों के नाम इस प्रकार हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

"(१) जूंणसी (२) हमीर (३) भडसी (४) आलणसी (५) जीतमल (६) हणूतराव (७) महलणसिंह (८) सूजो (६) भोजो (१०) बाघो (११) बलीबंग (१२) गोपाल (१३) तोरणराव ।"

'वीर-विनोद' में केवल प्रथम चार पुत्र ही प्रसिद्ध है। ज्येष्ठ पुत्र जूंणसीजी (जोनसी) आमेर के शासक बने थे। पद्य में इनका संकेत है—

"धीमांस्तस्य पदं शशास विधिवत्सूनु र्बली **कुन्तिलो**
लालत्कीलित शत्रुरिन्दुरुचिरो दुर्गं परं रोचयत्।
रामाभिः स च **पञ्चभिः** सुचतुरो रेमे रतिं वर्द्धयन्
पुत्रानात्मसमां **स्त्रयोदश** दिशोधावच्च लेभे यशः" ।।५६।।

१२. **महाराज जूंणसीजी** (माघ कृ० १० स० १३७४ से माघ कृ० ३ सं० १४२३)

महाराज 'योनसि' के जीवनकाल में शान्ति रही। कोई भी उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। इनके 'उदयकरणजी' ज्येष्ठ पुत्र थे, जिन्होंने आमेर का राज्य संभाला था—

"कुन्तैरुन्नत वैरिदन्तदलिनि क्ष्मापालके **कुन्तिले**
याते चारुतिलोत्तमादिकलितं गीत समाकर्णके।
राज्यं तस्य **सयोनसिर्विनयवान्** रूपैर्नयैरर्दयन्
दस्यून् वश्यनृपावलिर्विबुभुजे चन्द्राननां चाङ्गनाम्" ।।७६१।।

१३. **महाराज उदयकरणजी** (माघ कृ० ३ सं० १४२३ से फाल्गुन कृ० ३ स० १४४५)

इनके विषय में भी कोई विशेष वृत्तान्त नहीं मिलता। इस काव्य में भी एक ही पद्य द्वारा इनका वर्णन किया गया है। इनके पुत्र 'नरसिंह' उत्तराधिकारी बने थे—

"तस्योद्यत् **किरणो** बभूव तनयो बाल्येऽपि भूयो नयो
जन्मागार तमो निरासक महावंशार्णवेन्दुर्वशी।
ताते भुक्तसमुज्झिताखिल सुखे नाकोन्मुखे सत्सखे
वर्षन्वस्वमृतं प्रजाकुमुदिनी राल्हादयामास सः ।।७६२।।

इनका संस्कृत नाम—'उद्यत् किरण' रखा गया है।

१४. **महाराज नरसिंहजी** (फाल्गुन कृ० ३ सं० १४४५ से भाद्रपद कृ० ६ सं० १४८५)

श्री उदयकरणजी के पुत्र का नाम नरसिंह था। पद्य है—

"तस्य स्वानुगुणो गुणैरगणितै वर्ण्यः सुवर्णोज्ज्वलो
जज्ञे नूनमतिर्मनोज्ञरचना नारीमनोरोचनः।
पुत्रो मित्ररुचि हृदम्बुज मुदि **त्रिभ्रातृ**कस्योन्नतो
नाम्नायं **नरसिंह** माह मुदितो भूरिस्म भूमीपतिः" ।।७६३।।

इनके तीन रानियां थीं तथा ७ छोटे भाई थे। तीन पुत्रों में से ज्येष्ठ पुत्र बनवीर ने आमेर का

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शासन किया था। वंशावलियों से यह सभी संख्या सिद्ध है। महाराज उदयकरणजी के आठ पुत्रों के नाम इस प्रकार मिलते हैं—

"(१) नरसिंह (२) वरसिंह (३) बालाजी (४) शिवब्रह्म (५) पातल (६) पीथल (७) नाथा (८) पीपाजी।"

इनकी तीन रानियों के विषय में इतिहास का साक्ष्य इस प्रकार है—

"(१) सीसोदणी जी राणा दुदा हमीर की (२) सोलंखणी जी राव सातल बली की बेटी (३) भागा चौहाण जी पुष्पराज की पुत्री थे। इनके बनवीर (२) जैतसी और (३) कांधल तीन पुत्र हुए थे।"

पद्य हैं—

'तेनासौ तनयेन प्रोदितमना राजाजितारिर्वली
रामाभिः **तिसृभि** विभुज्य बहुलं **भौमं** चिरं सत्सुखम्।
स्वसौख्याभिमुखो बभूव स तदा **सप्तानुजो** बुद्धिमान्
सूनुस्तस्य जुगोप गोपतिरिव प्रोच्छन्माही मण्डलम् ॥७६४॥
तिस्त्रो सौरमयन्वधूरवहितो निर्धूतवैरिव्रजो
लब्ध श्रीर्जनयां बभूव तनयांस्तासु प्रभावोज्ज्वलान्।
श्रीनुग्रानपि राज्यमर्जितयशाधाम व्रजन्नाकिनां
सत्सूनौ **वनवीर** नामति निजं सर्वं स राजं दधौ ॥"६५॥

१५. **महाराज वनवीरजी** (भाद्रपद कृ० ६ सं १४८५ से आश्विन कृ० १२ सं० १४९६)

इनकी भी कोई उल्लेखनीय घटना नहीं है। इनके ६ रानियां थी और ६ पुत्र थे परन्तु इस काव्य में उनके ५ पुत्रों का ही उल्लेख है। इतिहास में लिखा है—

"इनके ६ रानियां थी। (१) उत्सवरंगदे (तंवरजी) कंवल राजा की (२) राजमती (हाडीजी) गोविन्दराज की (३) कमला (सीसोदणीजी) कीचैंचाकी (४) सहोदरा (हाडीजी) बाधा की (५) करमवती (चौहाणजी) बीजा की और (६) गौरां (वघेलीजी) रणवीर की थी। इनके पुत्र १. उद्धरण २. मेलक ३. नरो ४. वरो ५. हरो और ६. वीरम थे।" (पृ० ३२)

पद्य है—

षड्जानिः स षड़ाननश्रियमपि स्वस्मिन्समावेशयन्
लब्धं राज्यमवत् पितुर्भुजबलै जित्वारिपून् दुर्जयान्।
पंचोत्पाद्य सुतान् प्रकामसुभगान् भुक्त्वा च भौमं सुख
पात्रे वित्तमपि प्रणीय बहुल यातिस्म दिव्यं पदम् ॥७६६॥"

श्री उद्धरण जी (आश्विन कृ० १२ सं० १४९६ से सं० १५२४ मार्गशीर्ष कृ १४)

इनके चार रानियां थी। पुत्र एकमात्र श्री चन्द्रसेन जी थे। इतिहास में इनके नाम ये हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

(१) हंसावदे (राठौड़ जी) राव रणमल की (२) मापू (चौहाण जी) मेदा की (३) इन्द्रा (सीसोदण जी) राणा कुम्भा की (४) अनन्तकुंवरि (चौहाण जी) राव वैरिसाल की पुत्री थी। पुत्र १. चन्द्रसेन जी थे।"
पृ० (३२)

काव्य का पद्य इस प्रकार है—

"धीमानुद्धरणाभिधो भुजबलैरूद्धू नितारिव्रजो
दीर्घापञ्जलधि प्रमज्जदचिर प्रोद्धारण प्रोद्धुरः ॥
राज्यं प्राप्य पितुर्विराजित यशो राशीनुदुराशाततो
कान्ताभिः बुभुजे चिरं चतसृभिर्भौमं स्मरामः सुखम् ॥७६८॥'

इनके पुत्र चन्द्रसेनजी का वर्णन इस पद्य से प्रकट किया है—

"तस्मिन् विस्मयकारिणी च तनये श्रीशालिनि प्रोन्नते
लोकाह्लादिनि चन्द्रमस्सुरुचिरे द्राक् **चन्द्रसेनाह्वये**।
चन्द्रे ध्वान्तचयानि वाजिषु परा नाराज्जयत्युत्मना
राजा रज्जयितुं नरानिव सुरान् सौरान्वयस्वं ययौ ॥७७०॥"

१७. **महाराज चन्द्रसेन जी** (मार्गशीर्ष कृ० १४ सं १५२४ से फाल्गुन शु० ५ सं १५५६)

इनके सम्बन्ध में कोई विशेष उल्लेख नहीं है। इनके ६ पत्नियां थी। पुत्रों में से ज्येष्ठ महाराज पृथ्वीराज आमेर के शासक बने। इतिहास में लिखा है—

"महाराजा चन्द्रसेन की राणी १, नोली (सोलंखणीजी) सांतल की, २. बोली (बडगुजरजी) राव चांदा की, ३. अमृत दे (चौहाणजी) ऊधो की ४. रांकण (सुरताणजी) रावत कुम्भाकी ५. भांगा (चौहाणजी) नरसिंह की ६. आभावती (चौहाणजी) वीरमदेव की थी। इनके पुत्र १ पृथ्वीराजजी अमृत दे (चौहाणजी) के उत्पन्न हुए।" (पृ० ३३)

पद्य है—

"राज्यं प्राप्य पितुश्शतक्रतुरुचो विक्रम्य जित्वा रिपून्
आपूर्यद्रविणैः स्वकोशमधिकं चिक्रीड **षड़भिर्युवा**॥
कान्ताभिः सुमनोहराभिरभितो राजावनीषु श्रिया
राजन्तीषु जयी गजीभिरिव स श्रीमान् गजाधीश्वरः॥"७७१"
श्रीमांस्तस्य सुतो बभूव बलवान् पृथ्वीपतिर्बुद्धिमान्
पृथ्वीराज मरातिभीतिकरमं नाम्ना स नामोत्सवे।
एवं प्रीतमनाद्विजैरभिदधे संपूजितैर्व्याहृतो
हृष्यद्भि र्बहुरत्न हेमनिकरं श्री **चन्द्रसेनः** किरन् ॥७७२॥"

१८. **महाराज पृथ्वीराजजी** (फाल्गुन शु० ५ सं १५५६ से कार्तिक शु. ११ सं १५६४)

इनका नाम इतिहास में बहुत ही प्रसिद्ध है। यह काव्य भी इन्हीं के नाम पर लिखा गया है। इनका जीवन एक भक्त के समान था। प्रथम तो ये बाबा चतुरनाथ के शिष्य बनकर जोगी बन गये थे परन्तु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बाद में श्री कृष्णदासजी पयोहारी के शिष्य बनकर भगवान श्रीकृष्ण के उपासक बनगए थे। आमेर जाते समय संस्थापित बदरीनाथजी की डूंगरी आपके द्वारा ही बनवाई गई थी। आपकी पत्नी बालां बाई प्रसिद्ध कृष्ण भक्त थी तथा प्रतिदिन भगवान बद्रिकेश्वर के दर्शन करने जाया करती थी। इनके सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियां हैं। आमेर में बालांबाई की साल' के नाम से आज भी एक स्थान है, जहां राजघराने के मांगलिक कार्य संपन्न होते थे।

महाराज पृथ्वीराज के राज्याधिरूढ होने का समय इस काव्य में पद्य द्वारा प्रस्तुत किया गया है जो सभी इतिहास-ग्रन्थों से पुष्ट है। पद्य है—

"राज्यं प्राज्यतमं विभुज्य जनके स्वाराज्य भोगेशया
स्वर्याते बहुदायिनि श्रितनयः श्री चन्द्रसेने नृपः ।।
अङ्केषुश्वसनावनौ परिमिते संवत्सरे वैक्रमे
चक्रे फाल्गुनकृष्ण कुण्डलितिथौ विप्रैरसौ पार्थिवः ।।७७४।।"

अङ्क-९, इषु-५, श्वसन-५ अवनि-१ अङ्कानां वामतो गतिः=१५५९ विक्रम संवत्-फाल्गुनकृष्णा कुण्डलि=सर्प=पंचमी तिथि को इनका राज्याभिषक हुआ था।

इस काव्य में इनके विषय में कोई विशेष उल्लेख नहीं है। इनके ९ रानियाँ थी, १८ पुत्र थे तथा इन्होंने २४ वर्ष ८ मास २१ दिन राज्य किया था इसका उल्लेख है। इनके पश्चात इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री पूर्णमल आमेर की गद्दी पर बैठे थे, इस दिन कार्तिक शुक्ला ११ थी। वंशावलियों में इनके १९ पुत्र बतलाये हैं जबकि इस काव्य में १८ का ही उल्लेख है। रानियों के संबन्ध में भी लिखा है कि बालांबाई के अतिरिक्त ९ थीं परन्तु यह इतिहास से असत्य सिद्ध है। बालांबाई का नाम अपूर्व देवी था। यही भ्रांति संख्या में वृद्धि करती है। इतिहास में लिखा है—

"पृथ्वीराज जी के राणी—(१) भागवती (बड़गुजर जी) देवती के राजा जैता की, (२) पदारथदे (तंवर जी) भगवन्तराव गांवडी की (३) अपूर्वदेवी "बालांबाई" (राठौड़ जी) राव लूणकरण जी बीकानेर की (४) रूपावती (सोलंखणी जी) राव लखानाथ टोडा की (५) जांबवती (सीसोदण जी) राणा रायमलजी उदयपुर की (६) रमादे (निर्वाण जी) रायसल अचला की (७) रमादे (हाडी जी) रावनरवद बूंदी की (८) गौखदे (निर्वाण जी) धामदेव की और (९) नरबदा (गौड जी) खैरहथ की थीं।" (पृ० ४२)

"रामाभिर्विजहार भूरिनवभि लंब्धाङ्गकामद्युति
श्रीदश्री स्मरसुन्दरी सुरुचिभिः द्रोणी निजादे शुभा।
नानतुंप्रभवप्रसूननिकर स्वामोद मत्तालिका
अध्युष्येन्दुमरीचि रोचितरू श्री चन्द्रसेनात्मजः ।।७७५।।"

पुत्रों के विषय में लिखा है—

'तस्याष्टादशतुष्टिदाजनहृदां पुत्राः वभूवुः शुभा
मित्राभासुहृदां हृदम्बुजवने शूरारणोत्साहिकः ।।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

राजा राज्यसुखं चतुर्भिरधिकां संवत्सराणामसौ
भेजे विंशतिमेकविंशति दिनामष्टौ च मासानपि ।।७७६।।"

१६ महाराज पूर्णमलजी (कार्तिक शु० ११ सं० १५८४ से माघ शु० ५ सं० १५६०)

इनके संबन्ध में इतिहास में मतभेद हैं। इतिहास-लेखक श्री हनुमानप्रसाद शर्मा ने लिखा है कि ये १८ भाइयों में एक से बड़े तथा अन्य सबसे छोटे थे। किसी कारणवश महाराज पृथ्वीराज ने इन्हें अपना उत्तराधिकारी बनाया था। इस काव्य में भी इनके लिए कहीं ज्यायान शब्द का प्रयोग नहीं हुआ है। लिखा है

"पृथ्वीराजसमाह्वये नरपतौ याते पदं नाकिनाम्
कीनाशाति भयङ्करे भगवतो व्युत्थापनार्हे तिथौ।
अत्येद्युस्तनयोस्य भास्वरवपुः श्री पूर्णमल्लाभिधो
राज्यं प्राज्यगुणं गुणैरगणितैराय प्रजारञ्जयन् ।।७७७।।"

इन्होंने ६ वर्ष २ मास २३ दिन राज्य किया था। इनकी मृत्यु संदिग्ध है। कुछ लोग भीमसिंह (भाई) द्वारा मारे गए थे, ऐसा कहते हैं, कुछ प्राकृतिक मृत्यु बतलाते हैं। इनकी मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र सूजाजी बालक थे और इसलिये इनके भाई महाराज भीमसिंह गद्दीनशीन हुए।

षड्वर्षाणि षडाननोन्नतरुचि नीचीकृतान्यद्युति
द्वौमासौ दिवसानपि श्रुतवतां वर्यस्त्रयोविंशातिम्।
भुक्त्वा भौमसमौ सुखं सुखसखौ राजा बुभूर्बुदिवं
पुष्पोद्यैरनघोर्जितां जितरिपुः श्री पूर्णमल्लो ययौ ।।७७८।।"

२०. महाराज भीमसिंहजी (माघ शु. ५ सं १५६० से श्रावण शु. १५ सं. १५६३)

यहां पहुंच कर नियमित चला आ रहा कछवाहों का इतिहास अपने नियमों से च्युत हो गया। गद्दी पर श्री पूर्णमल के बेटे श्री सूजासिंह नहीं बैठे। उनके भाई श्री भीमसिंहजी ने संभाली। उनके विषय में इतिहास अभी तक संदिग्ध है। कोई इन्हें पितृहन्ता तथा भ्रातृहन्ता बतलाते हैं। उपलब्ध काव्य का यह अन्तिम पद्य है जिसमें महाराज **भीमसिंह** को उत्तराधिकार मिलने का वर्णन है—

"याते तूवरिकासुते सुरपुरं बालासुनो विक्रमी
संचक्राम च वैक्रमे बलनिधि **व्योमाङ्क बाणेन्दुभिः**।
वर्षे संकलिते **सहस्यधिक धी शुक्ले मृडानी** तिथौ
राज्यं भ्रातुरलंचकार चतुरो भीमोभिधस्स्वैर्बलैः ।।७७९।।

यावन्मात्र वंशावलियों एवं इतिहास ग्रन्थों में श्री पूर्णमल की निधनतिथि तथा महाराज भीमसिंह की राज्याभिषेक तिथि माघ शु. ५ सं. १५६० दी गई है, परन्तु इस काव्य में संवत् तो ठीक है परन्तु मास व तिथि का उल्लेख ठीक नहीं है। 'सहस्य' का अर्थ पौष मास होता है—"पौषे तैष सहस्यौ है।" अमरकोश में लिखा है। 'अधिक धी' शब्द से तात्पर्य यदि एक मास अधिक है तो मास ठीक है। 'मृडानी' तिथि से तात्पर्य पंचमी तो नहीं होता। षष्ठी या एकादशी होता है। एक तिथि का अन्तर कोई महत्वपूर्ण अन्तर नहीं। पद्य में – 'भ्रातु रलंचकार' पद इस बात को सिद्ध करता है कि श्री भीमसिंह अपने भाई के उत्तराधिकारी बने थे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस पद्य में उनकी माता 'बालाबाई' का भी उल्लेख है– 'बालासुतो' पद से। संवत् के लिये विशेष लिखने की आवश्यकता नहीं है– व्योम=०, अंक=९, बाण=५, इन्दु=१– अंकानां बामतो गतिः के अनुसार १५९० संवत् आ जाता है।

खेद है, इस पद्य के पश्चात् ग्रन्थ के पत्र नहीं मिलते। अतः अपूर्ण होने से नहीं कहा जा सकता यह कितना और रहा होगा।

समालोचन

इस ग्रन्थ के लेखक का नाम उपलब्ध पद्यों में कहीं भी नहीं मिलता। ग्रन्थ के नाम के सम्बन्ध में भी केवल पुस्तक के (उपलब्ध पत्रों के ७ वें पत्र के पृष्ठ पर लिखे गए– "गोकुल प्रसाद स्यैदं पुस्तकं पृथ्वीराजविजय खण्डित १२ पत्राणि" के आधार पर स्वीकार किया गया है। मेरी दृष्टि में इस काव्य का यह नाम नहीं रहा होगा। क्योंकि इस काव्य का नायक यदि पृथ्वीराज को मानते हैं तो लेखक उसका बहुत विस्तृत वर्णन करता तथा उनके जीवन की घटनाओं पर विशद् प्रकाश डालता। लेखक ने पृथ्वीराज के विषय में कोई भी उल्लेखनीय घटना नहीं लिखी है तथा रानियों एवं पुत्रों की संख्या मात्र दो है। किसी भी काव्य या महाकाव्य के नायक के लिए २–३ पद्य लिखना ही पर्याप्त नहीं माना गया है। फिर एक बात और भी है। पृथ्वीराज ही यदि इसके नायक हैं तो उनकी 'विजय' से सम्बन्धित किसी घटना का उल्लेख भी होना चाहिये– तब नाम की सार्थकता बनेगी। इसके अतिरिक्त लेखक इसकी समाप्ति पृथ्वीराज के शासनकाल के साथ ही नहीं करता, वह उसके पुत्र पूर्णमल व भीमसिंह का भी वर्णन करता है। चूंकि इतने ही पद्य उपलब्ध हैं, अतः नहीं कहा जा सकता इसके पश्चात् कितने शासकों का वर्णन और किया होगा। श्री पृथ्वीराज के वर्णन से तो अधिक महाराज सोढदेव व दूलहराय का वर्णन है।

जब इस काव्य का नाम "पृथ्वीराज विजय" उचित नहीं है तो क्या नाम हो सकता है– इस पर विचार करना भी कठिन है। यदि ग्रन्थ आदि या अंत में कहीं भी पूर्ण होता तो यह विचार फिर भी संभव था। इतना जरूर कहा जा सकता है कि इसमें जयपुर (आमेर) के कछवाहों का इतिहास वर्णित है और यह इतिहास उपलब्ध वंशावलियों एवं ऐतिहासिक घटनाओं के विरुद्ध नहीं है। कहीं कहीं मत-मतान्तर अवश्य हैं परन्तु वे इतने विचारणीय नहीं है। बीच-बीच में शासनकाल का भी संकेत इसके ऐतिहासिक काव्यत्व में सहयोगी है। चूंकि, इसमें इतिहास एवं ऐतिहासिक घटनाओं का काव्यमय वर्णन है, अतः ऐतिहासिक काव्य को स्वीकार करने में सन्देह नहीं है। महाकाव्य स्वीकार किया जाय या नहीं, यह प्रश्न विचारणीय अवश्य है, परन्तु ग्रन्थ के पूर्ण उपलब्ध न होने एवं उपलब्ध पद्यों के आधार पर इसे लक्षणग्रन्थों की कसौटी पर नहीं उतारा जा सकता।

सारांश में– यही कहा जा सकता है कि पद्य सरल एवं सुन्दर हैं। यह एक ऐतिहासिक काव्य है– यह तथ्य निर्विवाद है। ग्रन्थ में अशुद्धियां लेखक की न होकर लिपिकार की हैं, जिसने मूलग्रन्थ से इसकी नकल की थी। ग्रन्थ त्रुटित व कीट अशित लगता है, क्योंकि अनेक स्थानों पर पद उपलब्ध नहीं है।

इस काव्य की पूर्ण प्रतिलिपि राजकीय पोथीखाने में हो सकती है। यदि वह उपलब्ध हो तो इस पर विवेचना की जा सकती है।

———

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org